दैनिक भास्कर

Date: 28-02-26

सीबीआई की जांच प्रक्रिया पर गम्भीर सवाल उठे हैं

संपादकीय

सालों चली जांच और मुकदमे - जिसके कारण दिल्ली सीएम अरविंद केजरीवाल को पद से हटना पड़ा था- के बाद कोर्ट ने उन्हें और मनीष सिसोदिया सहित सभी मुख्य आरोपियों को न केवल बरी किया, बल्कि जांच अधिकारी के ही खिलाफ कार्रवाई का आदेश दे दिया। कोर्ट ने कहा कि भारी-भरकम चार्जशीट अपुष्ट तथ्यों पर आधारित थी और गवाहों के बयान में कमियां थीं। कोर्ट ने यह भी कहा कि एक संवैधानिक पद पर बैठे व्यक्ति को बगैर किसी पुख्ता सबूत के फंसाना कानून के राज पर बड़ा धब्बा है। सवाल यह है कि क्या इसमें केवल एक जांच अधिकारी ही दोषी है ? क्या तत्कालीन सीबीआई निदेशक ने जांच की प्रक्रिया नहीं देखी ? केजरीवाल जनता द्वारा चुने हुए नेता रहे हैं, जो एक पार्टी का नेतृत्व करते हैं। क्या सीबीआई निदेशक या अन्य बड़े अधिकारी जांच और अभियोजन की इतनी बड़ी कमजोरी को नहीं देख सके, जिसे कोर्ट ने सहज ही देख लिया ? इसी केस के आधार पर ईडी ने भी अपना शिकंजा सीएम सहित तमाम आप नेताओं पर कसा था। पीएमएल एक्ट ईडी को बाध्य करता है कि वह किसी अनुसूचित अपराध के दर्ज होने के बाद ही धन शोधन की जांच का संज्ञान लेगा। ताजा फैसले के बाद ईडी के लिए भी केजरीवाल के खिलाफ मामला चलाने का कोई आधार न होगा। क्या यही कारण है कि ईडी के मामलों सजा की दर एक हजार में मात्र दो की ही है ?

Date: 28-02-26

जो देश 6 जी की दौड़ में आगे, दुनिया पर उसी का दबदबा

ब्योर्न फैगर्स्टन, (स्वीडिश इंस्टिट्यूट ऑफ इंटरनेशनल अफेयर्स में सीनियर फेलो)

मार्च में बार्सीलोना में होने जा रही मोबाइल वर्ल्ड कांग्रेस में नए प्रोडक्ट-लॉन्चों और बड़ी-बड़ी बातों के बीच हर किसी के मन में एक ही सवाल होगा कि 6जी की दौड़ में दुनिया का नेतृत्व कौन करने जा रहा है ?

मोबाइल टेक्नोलॉजी की अगली पीढ़ी यह तय करेगी कि उस महत्वपूर्ण इंफ्रास्ट्रक्चर पर किसका नियंत्रण होगा, जिस पर आधुनिक अर्थव्यवस्थाओं, सुरक्षा तंत्रों और लोकतांत्रिक सरकारों की निर्भरता बढ़ती जा रही है। 6जी के तकनीकी स्टैंडर्ड अभी

से तय किए जाने लगे हैं। 2028 तक इसकी रूपरेखा बन सकती है और 2030 के आसपास इसे लागू कर दिया जाएगा। जो भी इस क्षेत्र में लीड करेगा, वही आने वाले दशकों तक आर्थिक और सामरिक वर्चस्व की स्थिति में रहेगा।

वास्तव में 6जी की दौड़ 5जी की तुलना में ज्यादा पहले शुरू हो रही है- और कहीं अधिक गहराई तक जा रही है। 5जी को लेकर होने वाली राजनीति इस प्रश्न पर केंद्रित थी कि क्या हुआवेइ जैसे चीनी विक्रेताओं पर राष्ट्रीय नेटवर्क बनाने के लिए भरोसा किया जा सकता है। पश्चिमी सुरक्षा अधिकारियों के दबाव ने हुआवेइ को स्वयं में बदलाव लाने के लिए बाध्य किया । प्रमुख पश्चिमी बाजारों से कट जाने के बाद उसने अपनी आपूर्ति श्रृंखलाओं का पुनर्गठन किया, घरेलू इनोवेशन को बढ़ाया और राज्यसत्ता के समर्थन से चीनी सरकार के सामरिक उद्देश्यों के अधिक अनुरूप होकर उभरी।

लेकिन 6जी को लेकर संघर्ष सप्लायर्स का नहीं, तकनीकी ब्लूप्रिंट का है। 6जी सेल्युलर टेक्नोलॉजी से अपेक्षा है कि वे एआई और एडवांस्ड कम्प्यूटिंग को सीधे नेटवर्क संरचना में जोड़ेंगी, जिससे बड़े पैमाने पर ऑटोमेशन संभव होगा। लेकिन जब अरबों डिवाइसेस आपस में जुड़ी होंगी और नेटवर्क खुद ही सेंसर और एआई लेयर के रूप में काम करेगा, तो डिजाइन में मौजूद किसी भी तरह की कमजोरी के व्यापक परिणाम भी हो सकते हैं। डिजिटल सम्प्रभुता बुनियादी ढांचे पर निर्भर है। अगले दशक में निर्मित होने वाले नेटवर्क उसी डेटा को कैरी करेंगे, जिनसे अस्पताल, बिजली ग्रिड, सैन्य प्रणालियां और चुनाव प्रणालियां संचालित होती हैं।

वर्तमान में इस दौड़ में तीन ताकतें अग्रणी हैं। एक है चीन, जिसके पास भरपूर सामर्थ्य है। दुनिया के 6जी - संबंधी पेटेंट आवेदनों का 40% से अधिक हिस्सा उसके पास है और उसकी सरकार ने रिसर्च को बढ़ाने के लिए पूरी क्षमता झोंक रखी है। 5जी को लेकर हुए टकराव से कमजोर होने के बजाय और मजबूत होकर उभरी हुआवेई इसके केंद्र में है। राज्यसत्ता की पूरी शह के चलते वह इस स्थिति में है कि समानांतर प्रणालियां भी संचालित कर सकती है। चीन ने अंतरराष्ट्रीय मानकीकरण के संस्थानों में भी भारी निवेश किया है और बुनियादी ढांचा सम्बंधी कूटनीति के जरिए वह ग्लोबल साउथ के देशों को साधने का प्रयास कर रहा है।

अमेरिका 6जी को एक अलग पोजिशन से देखता है। उसकी टेक कम्पनियां कनेक्टिविटी से उत्पन्न वैल्यू का बड़ा हिस्सा अर्जित करती हैं, भले ही वे रेडियो नेटवर्क का निर्माण न करती हों। फिर भी, अमेरिका मुख्य हार्डवेयर के लिए गैर-अमेरिकी विक्रेताओं- विशेष रूप से एरिकसन और नोकिया पर निर्भर बना हुआ है। ओपन रेडियो एक्सेस नेटवर्क के जरिए बाजार को नया आकार देने के प्रयासों का अब तक कोई खास असर नहीं पड़ा है, हालांकि 6जी के निकट आने के साथ ऐसी कोशिशों के पुनः उभरने की संभावना है।

इस बीच, अमेरिका कनेक्टिविटी पर अपना प्रभाव बढ़ाने के लिए वैकल्पिक व्यवस्थाओं जिनमें सैटेलाइट और सॉफ्टवेयर-आधारित प्रणालियां शामिल हैं- को भी प्रोत्साहित कर सकता है। क्लाउड और एआई सेवाओं में पहले ही अमेरिकी प्रभुत्व स्थापित है। इसे नेटवर्क लेयर तक बढ़ाना उस पर दुनिया की मौजुदा निर्भरताओं को और गहराएगा ही। इससे उन देशों के सामने नई सामरिक चुनौतियां पैदा होंगी, जो पहले ही अमेरिकी प्लेटफॉर्म और सेवाओं पर निर्भर हैं।

यूरोप का मामला तो और अजीब है। वह अनेक डिजिटल क्षेत्रों में पिछड़ा हुआ है, किंतु टेलीकॉम के क्षेत्र में अब भी ग्लोबल लीडर है। एरिकसन और नोकिया उन गिनी-चुनी कंपनियों में हैं, जो व्यापक पैमाने पर पूर्ण रेडियो एक्सेस नेटवर्क प्रदान करने में सक्षम हैं। यह औद्योगिक आधार यूरोप को ऐसा प्रभाव देता है, जो बहुत कम क्षेत्रों के पास है। किंतु यही स्थिति

तनाव का कारण भी बन सकती है। चूंकि यूरोपीय टेलीकॉम कंपनियां अमेरिकी आपूर्ति श्रृंखलाओं और बाजारों से गहराई से जुड़ी हुई हैं, इसलिए ईयू की रणनीति तैयार करने वालों के लिए यह मान लेना सम्भव नहीं है कि उनकी भू-राजनीतिक महत्वाकांक्षाएं और कॉर्पोरेट प्रोत्साहन हमेशा एक-दूसरे के अनुरूप बने रहेंगे।

दैनिक जागरण

Date: 28-02-26

आगे आए उद्योग जगत

संपादकीय

बजट के बाद 'विकसित भारत के लिए प्रौद्योगिकी, सुधार एवं वित्त' विषय एक वेबिनार को संबोधित करते हुए प्रधानमंत्री मोदी ने यह जो कहा कि भारतीय कंपनियों को नए निवेश एवं नवाचार के साथ आगे आना चाहिए, उस पर उन्हें सकारात्मकता के साथ अपनी सक्रियता का परिचय देना चाहिए। प्रधानमंत्री ने उद्योग जगत से बजट घोषणाओं का लाभ उठाने का आग्रह भी किया। कायदे से तो ऐसे किसी आग्रह की आवश्यकता ही नहीं पड़नी चाहिए। उद्योग जगत को स्वतः सक्रिय हो जाना चाहिए। यह पहली बार नहीं, जब प्रधानमंत्री ने उद्योग जगत को नवाचार के जरिये अपनी क्षमता प्रदर्शित करने को कहा हो। वे इसके साथ ही यह भी कहते रहे हैं कि उद्योग जगत को वैश्विक प्रतिस्पर्धा का सामना करने में सक्षम बनना चाहिए और शोध एवं विकास में निवेश करना चाहिए। विडंबना यह है कि हमारे ऐसे बड़े कारोबारी भी यह काम नहीं कर रहे हैं, जिनके पास पूंजी की कोई कमी नहीं। वे नवाचार के नाम पर ऐसे नए काम अधिक हाथ में लेते हैं, जिनसे कम समय में आसानी से धन अर्जित किया जा सके। यही कारण है कि वे ऐसे कोई उत्पाद तैयार नहीं कर पा रहे हैं, जिनकी देश के साथ दुनिया में भी मांग हो ।

यह सामान्य बात नहीं कि चौथी सबसे बड़ी अर्थव्यवस्था बन जाने के बाद भी चंद भारतीय उत्पाद ही ऐसे हैं, जिनकी विश्व में थोड़ी-बहुत पहचान और प्रतिष्ठा है। यह भी किसी से छिपा नहीं कि भारतीय उद्योग जगत शोध एवं विकास में पैसा खर्च न कर पाने के कारण न तो चीनी उत्पादों का मुकाबला कर पा रहे हैं और न ही अपने उत्पाद विश्व बाजार में आसानी से खपा पा रहे हैं। जहां चीन में उद्योग जगत आर्थिक विकास का नेतृत्व करते दिखता है, वहीं भारत में कारोबारी सरकार के प्रोत्साहन पर भी तत्परता नहीं दिखाते। एक-दो कारोबारी समूहों को छोड़ दिया जाए तो आम तौर पर हमारे कारोबारी वैश्विक स्तर की उत्पादकता हासिल करने के लिए सक्रिय नहीं। वे अपने उत्पादों की गुणवत्ता भी विश्वस्तरीय बनाने के लिए उत्साही नहीं हैं। एक ऐसे समय जब सरकार एक के बाद एक देशों से मुक्त व्यापार समझौते कर रही हैं और इसके चलते शीघ्र ही कई विकसित देशों के बाजार भी भारतीय उद्योग जगत की पहुंच में होंगे, तब तो उन्हें इन समझौतों का पूरा लाभ उठाने के लिए कमर कसनी ही चाहिए। इसलिए और भी, क्योंकि सरकार प्रक्रियाओं को सरल बनाने के साथ कारोबारी सुगमता बढ़ाने के लिए निरंतर प्रयत्न कर रही है। उचित यह होगा कि प्रधानमंत्री ने सरकार, उद्योग जगत, वित्तीय संस्थानों और शिक्षाविदों के बीच सहयोग स्थापित करने वाले जिस 'रिफार्म पार्टनरशिप चार्टर' की बात की, उस पर गंभीरता

से काम हो, ताकि वह विकसित भारत की मजबूत आधारशिला बन सके।

Date: 28-02-26

विकसित देश का मंत्र है वैज्ञानिक सोच

डा. सुशील द्विवेदी, (लेखक शिक्षा मंत्रालय के पीएम-ई-विद्या कार्यक्रम में विज्ञान विषय के संसाधक हैं)

राष्ट्रीय विज्ञान दिवस केवल वैज्ञानिक उपलब्धियों को याद करने का ही नहीं, बल्कि बच्चों, युवाओं से लेकर आमजन में वैज्ञानिक सोच को विकसित करने का अवसर भी बनना चाहिए। अगर भारत को विकसित देश बनना है, तो उसमें विज्ञान की बड़ी अहम भूमिका होगी। यह भूमिका तभी सार्थक होगी, जब हम वैज्ञानिक शोधों को अपनी कार्यसंस्कृति का हिस्सा बना लें। इसके लिए आवश्यक होगा कि हम बुनियादी स्तर से ही बच्चों को ऐसी जानकारियां देने के उपाय करें, जो उनमें वैज्ञानिक सोच के विकास में सहायक बने। इसके लिए पारंपरिक ज्ञान के साथ ही वैज्ञानिक स्वाभाव भी विकसित करना होगा। इसके लिए बच्चों को हर तरह के सवाल पूछने के लिए भी प्रोत्साहित करना होगा। बच्चों में वैज्ञानिक दृष्टिकोण पैदा करने के लिए उनमें आसपास की चीजों को समझने के प्रति कौतूहल भी पैदा करना होगा। पढ़ाई में रटने से ज्यादा महत्वपूर्ण होता है कि हमारे बच्चे प्रयोगशालाओं में प्रयोग करें और अपनी गलतियों से सीखें। 'करके सीखने' अर्थात लर्निंग बाय डूइंग के माध्यम से छात्रों के सैद्धांतिक ज्ञान को वास्तविक प्रयोगशाला के अनुभवों में सहायता मिलेगी। हालांकि यह सिर्फ सोचने भर से नहीं होगा। इसके लिए हमें गांवों से लेकर शहरों तक स्कूलों में अच्छी विज्ञान प्रयोगशालाओं का व्यापक जाल बिछाना होगा। इसी सोच से प्रेरित भारत सरकार द्वारा गत वर्ष अक्टूबर तक 10,000 से अधिक अटल टिंकरिंग लैब स्थापित की जा चुकी हैं और अगले पांच वर्षों में 50,000 नई अटल टिंकरिंग लैब्स स्कूलों में स्थापित करने की योजना बनाई है।

नीति आयोग के अटल इनोवेशन मिशन के तहत इन लैब्स का उद्देश्य कक्षा 6 से 12 तक के छात्रों में वैज्ञानिक जिज्ञासा, रचनात्मकता और स्टेम (साइंस टेक्नोलाजी -इंजीनियरिंग-मैथ) कौशल को बढ़ावा देना है। यह पहल हर जिले में तकनीक - आधारित नवाचार को बढ़ावा देगी। इस क्रम में वैज्ञानिक और औद्योगिक अनुसंधान परिषद यानी सीएसआइआर का 'जिज्ञासा' कार्यक्रम स्कूली बच्चों में वैज्ञानिक चेतना और जिज्ञासा जगाने के लिए एक महत्वपूर्ण पहल है। इस कार्यक्रम का मुख्य उद्देश्य "करके सीखने" (लर्निंग बाय डूइंग) के माध्यम से छात्रों के सैद्धांतिक ज्ञान को वास्तविक प्रयोगशाला के अनुभवों से जोड़ने में सहायक हो रहा है। इसरो का युविका (युवा विज्ञानी कार्यक्रम) स्कूली बच्चों में विज्ञान और अंतरिक्ष तकनीक के प्रति गहरी समझ और रुचि विकसित करने के लिए एक शानदार पहल है। इसे 'कैच देम यंग' यानी छोटी अवस्था में ही स्कूली छात्रों में अंतरिक्ष विज्ञान, प्रौद्योगिकी और अनुसंधान के प्रति रुचि जगाकर उनमें वैज्ञानिक दृष्टिकोण विकसित करने के उद्देश्य से आकार दिया गया है। दो सप्ताह के इस आवासीय कार्यक्रम में छात्रों को प्रख्यात विज्ञानियों

से मिलने, प्रयोगशालाओं का दौरा करने और व्यावहारिक प्रयोग (माडल राकेट्री) करने का अवसर भी मिलता है। राष्ट्रीय बाल विज्ञान कांग्रेस भी बच्चों में वैज्ञानिक दृष्टिकोण विकसित करने का एक सशक्त माध्यम बन चुका है। यह कार्यक्रम छात्रों को केवल किताबी ज्ञान तक सीमित न रखकर उन्हें वास्तविक दुनिया की समस्याओं को वैज्ञानिक पद्धति से सुलझाने के लिए प्रेरित करता है।

एनसीईआरटी द्वारा आयोजित राष्ट्रीय बाल वैज्ञानिक प्रदर्शनी भी बच्चों में वैज्ञानिक सोच और जिज्ञासा को बढ़ावा देने का एक सशक्त माध्यम बन गई है। यह प्रदर्शनी केवल एक आयोजन नहीं, बल्कि युवा मस्तिष्कों में नवाचार और रचनात्मकता का संचार करने वाला एक उत्सव है। राष्ट्रीय बाल वैज्ञानिक प्रदर्शनी राष्ट्रीय शिक्षा नीति के विजन के अनुरूप बच्चों में वैज्ञानिक दृष्टिकोण विकसित करने में अत्यंत सहायक सिद्ध हो रही है। इसी प्रकार स्पायर अवार्ड मानक प्रतियोगिता भारत सरकार की एक महत्वपूर्ण पहल है, जो स्कूली बच्चों में न केवल विज्ञान के प्रति रुचि पैदा कर रही है, बल्कि उनमें एक गहरा वैज्ञानिक दृष्टिकोण भी विकसित कर रही है। यह योजना बच्चों को अपने आसपास की समस्याओं को पहचानने और उनके लिए मौलिक समाधान सोचने के लिए प्रेरित करती है। ये सब प्रयास तब और रंग लाएंगे, जब देश का उद्योग जगत अपनी आवश्यकताओं के अनुरूप वैज्ञानिक अध्ययन संस्थानों से गठजोड़ करके अनुसंधान का सिलसिला शुरू कर उसे गति प्रदान करे। अगर शिक्षा और उद्योग क्षेत्र में यह साझेदारी विकसित हो जाती है तो भारत को जल्द विकसित राष्ट्र बनने से कोई नहीं रोक सकता ।

भारत के कुछ गिने-चुने ऐसे संस्थान हैं, जिन्होंने अपनी प्रगति और कामयाबी से दुनिया का ध्यान अपनी और खींचा है। इसरो इनमें सबसे आगे है, लेकिन भारत को विकसित राष्ट्र बनने के लिए इकलौते इसरो या आइआइटी से ही काम नहीं चलने वाला। हमें देश के अन्य उच्चस्तरीय संस्थानों में भी रिसर्च का एक बेहतर इकोसिस्टम विकसित करना होगा। यह भी ध्यान रखा जाए कि शोध- अनुसंधान का मतलब केवल पीएचडी कर लेना नहीं है। शोध तभी सफल है जब उसके केंद्र में यह बिंदु हो कि दैनिक जीवन को सुगम बनाने के लिए वह क्या योगदान कर सकता है? विज्ञान तभी सार्थक है जब कोई भी सामान्य समझ वाला व्यक्ति उसे आसानी से आत्मसात कर उसका उपयोग कर सके।

बिज़नेस स्टैंडर्ड

Date: 28-02-26

सब्सिडी पर अंकुश जरूरी

संपादकीय

सर्वोच्च न्यायालय ने मुफ्त योजनाओं के बढ़ते चलन पर पिछले हफ्ते नाराजगी जताई। अदालत की चिंता जायज है और इसके लिए केंद्र और राज्य सरकारों की सामूहिक प्रतिक्रिया जरूरी है। तमिलनाडु विद्युत वितरण निगम से जुड़े एक मामले की सुनवाई करते हुए भारत के मुख्य न्यायाधीश न्यायमूर्ति सूर्यकांत ने कहा कि अंधाधुंध मुफ्त योजनाओं के जरिये वितरण देश की आर्थिक नींव को कमजोर कर सकता है। यह महत्त्वपूर्ण है क्योंकि कई प्रदेश राजस्व घाटे का सामना कर रहे हैं, जिसका मतलब है कि वे सब्सिडी देने के लिए कर्ज ले रहे हैं या किसी न किसी योजना के तहत नकद राशि बांट रहे हैं।

अदालत के पीठ ने यह भी कहा कि ऐसी योजनाओं की घोषणा अक्सर चुनाव से पहले की जाती है। गौरतलब है कि अदालत ने माना कि राज्य का उन लोगों की मदद करने का दायित्व है जिन्हें शिक्षा और आवश्यक जन उपयोगी सेवाओं तक पहुंच नहीं है, लेकिन यह सहायता लक्षित होनी चाहिए।

सोलहवें वित्त आयोग ने भी सार्वजनिक वित्त पर इसके प्रभावों को रेखांकित करते हुए इस मुद्दे पर विस्तार से चर्चा की है। वित्त आयोग द्वारा 21 राज्यों के विश्लेषण से पता चला कि 2025-26 में कुल सब्सिडी और हस्तांतरण के लिए 9.73 लाख करोड़ रुपये का बजट रखा गया था, जबकि 2018-19 में यह महज 3.86 लाख करोड़ रुपये था। संयुक्त राज्य घरेलू उत्पाद (जीएसडीपी) के प्रतिशत के रूप में, सब्सिडी पर व्यय 2018-19 के 2.2 फीसदी से बढ़कर 2023-24 में 2.7 फीसदी हो गया। चालू वर्ष में नकद हस्तांतरण के लिए लगभग 2 लाख करोड़ रुपये का बजट रखा गया है। अब राज्यों की सब्सिडी और हस्तांतरण योजनाओं में इसका हिस्सा 20 फीसदी है। सबसे बड़ा हिस्सा बिजली सब्सिडी का है, जो 27 फीसदी है। वर्ष 2023-24 के लिए कुल बिजली सब्सिडी बिल 2.60 लाख करोड़ रुपये था। हालांकि, यह ध्यान रखना महत्त्वपूर्ण है कि बिल में राज्यों द्वारा प्रदान की गई वास्तविक सब्सिडी का स्तर कम करके दर्शाया गया है। इसका कुछ हिस्सा राज्य बिजली वितरण कंपनियों के बही खातों में दर्ज है, जो उनके संचित घाटे और ऋण में परिलक्षित होता है। राज्य सरकारों के अलावा, केंद्र सरकार भी विभिन्न प्रकार की सब्सिडी प्रदान करती है महामारी के दौरान आवंटन में वृद्धि हुई, लेकिन बाद के वर्षों में इसमें कमी आई और चालू वर्ष में यह सकल घरेलू उत्पाद (जीडीपी) का 1.76 फीसदी है। सब्सिडी आवंटन का अधिकांश हिस्सा खाद्य पदार्थों और उर्वरक के लिए जाता है।

वित्त आयोग ने अपनी रिपोर्ट में कहा कि यह चिंताजनक है कि एक बार लागू होने के बाद सब्सिडी या नकद हस्तांतरण योजना स्थायी रूप से प्रभावी रहती है। चूंकि सरकारी व्यय का एक बड़ा हिस्सा सब्सिडी में जाता है, खासकर ऐसे समय में जब सार्वजनिक ऋण सकल घरेलू उत्पाद का लगभग 80 फीसदी है, इस विषय पर गंभीर राष्ट्रीय बहस की आवश्यकता है। प्रतिस्पर्धी राजनीतिक माहौल में प्रत्याशियों का अक्सर सब्सिडी और नकद हस्तांतरण की राशि बढ़ाने पर जोर रहता है। इसलिए, कठोर राजकोषीय नियम बनाना आवश्यक है और सरकारी वित्त को मजबूत स्तर पर बनाए रखने के लिए तंत्र विकसित करने की आवश्यकता है।

यहां कई मुद्दे हैं। पहला, जरूरी और गैर-जरूरी सब्सिडी को स्पष्ट रूप से परिभाषित करने की आवश्यकता है। दूसरा, राज्यों द्वारा सब्सिडी और नकद हस्तांतरण पर खर्च की जाने वाली राशि पर स्पष्ट सीमा तय की जानी चाहिए, विशेष रूप से उन राज्यों के लिए जो राजस्व घाटे में चल रहे हैं और जिन पर भारी कर्ज है। तीसरा, भारत को इस बात पर आम सहमति की आवश्यकता है कि सरकारी खर्च का कितना हिस्सा सब्सिडी और नकद हस्तांतरण में जाना चाहिए। यह महत्त्वपूर्ण है क्योंकि सब्सिडी पर अधिक सरकारी खर्च राजकोषीय क्षमता को सीमित करता है, और अधिक उधार लेने की आवश्यकता निजी निवेश को कम कर देती है। सब्सिडी पर लगातार अधिक खर्च का सीधा असर दीर्घकालिक विकास संभावनाओं पर पड़ेगा।

Date: 28-02-26

राजनीतिक अर्थव्यवस्था की मौजूदा चुनौतियां

एके भट्टाचार्य

सोलहवें वित्त आयोग की रिपोर्ट गत एक फरवरी को 2026- 27 के बजट की प्रस्तुति के साथ सार्वजनिक की गई थी। उसकी सिफारिशों के साथ व्यापक रूप से टिप्पणियां भी हैं। हालांकि इन टिप्पणियों में एक समान बात नज़र आती है। इनसे संकेत मिलता है कि 16वें वित्त आयोग ने कुछ राज्यों की उस मांग को कोई रियायत नहीं दी है जिसमें या तो उनके लिए केंद्रीय करों के हस्तांतरण को वर्तमान 41 फीसदी से बढ़ाने की बात थी या फिर करों का विभाज्य पूल तय करने में उपकर और अधिभार को शामिल करने की मांग थी ।

आयोग ने कुछ राज्यों की उस मांग को भी स्वीकार नहीं किया है कि केंद्र प्रायोजित योजनाओं को समाप्त करके विभाज्य पूल में उनकी हिस्सेदारी बढ़ाई जाए। यह तर्क योजनाओं के क्रियान्वयन के विकेंद्रीकृत तरीके के पक्ष में था ताकि राज्य अपनी खास जरूरतों के मुताबिक उनको अपना सकें। राज्यों का तर्क था कि उन्हें उन केंद्र प्रायोजित योजनाओं के लिए विवश नहीं किया जाना चाहिए जिनमें उनके पास ज्यादा अधिकार नहीं होते लेकिन उनको लागत का करीब 40 फीसदी वहन करना पड़ता है। ऐसे में केंद्र सरकार इन योजनाओं पर व्यय को कम कर सकती थी और बचे हुए पैसों का इस्तेमाल विभाज्य पूल में राज्यों की हिस्सेदारी बढ़ाने में किया जा सकता था।

इन मांगों को स्वीकार करने के बजाय आयोग ने विभाजन के फॉर्मूले में ही कई बदलाव कर दिए हैं। उसने राज्यों को कर विभाजन का एक नया मानक बना दिया है। पहले 2.5 फीसदी का भार रखने वाले कर और राजकोषीय प्रयासों की जगह अब देश के सकल घरेलू उत्पाद में राज्यों के योगदान के लिए 10 फीसदी भार वाला एक नया मानक तय किया गया है।

यह बदलाव क्षेत्रफल को दिए गए भार को 15 फीसदी से घटाकर 10 फीसदी, जनसांख्यिकीय प्रदर्शन को 12.5 फीसदी से घटाकर 10 फीसदी और आय अंतर को 45 फीसदी से घटाकर 42.5 फीसदी करके किया गया है। वर्ष 2011 की जनगणना के आधार पर जनसंख्या का भार 15 फीसदी से बढ़ाकर 17.5 फीसदी कर दिया गया है। विकास का एकमात्र मापदंड जो अपरिवर्तित रहा है, वह है वन क्षेत्र, जिसका भार 10 फीसदी पर बरकरार रखा गया है।

इन परिवर्तनों का व्यापक उद्देश्य समानता पर ध्यान केंद्रित रखते हुए, सकल घरेलू उत्पाद (जीडीपी) में योगदान जैसे नए प्रदर्शन-आधारित मापदंड को अधिक महत्व देना प्रतीत होता है। ध्यान रहे कि क्षेत्रफल मापदंड किसी राज्य के भू-भाग को संदर्भित करता है। जनसांख्यिकीय प्रदर्शन किसी राज्य की प्रजनन दर को नियंत्रित करने में सफलता को दर्शाता है; और आय अंतर किसी राज्य के प्रति व्यक्ति सकल घरेलू उत्पाद (जीएसडीपी) और शीर्ष तीन राज्यों के औसत जीएसडीपी के बीच के अंतर को दर्शाता है।

किसी भी वित्त आयोग की सिफारिशें अनिवार्य रूप से देश की विकसित होती राजनीतिक अर्थव्यवस्था के लिए एक मजबूत संदेश देती हैं। चाहे वह 14वें वित्त आयोग द्वारा राज्यों के लिए ऊर्ध्वाधर हस्तांतरण में 10 फीसदी अंकों की तेज वृद्धि के

रूप में हो, या 15वें वित्त आयोग द्वारा राजस्व घाटा अनुदानों को धीरे-धीरे समाप्त करने के रूप में। इस कसौटी पर, 16वां वित्त आयोग भी अपवाद नहीं है।

करों के राज्यों के बीच वितरण के लिए नए मानदंडों का राज्यों पर जो प्रभाव पड़ा है, वहीं 16वें वित्त आयोग की सिफारिशों के राजनीतिक अर्थशास्त्र के दृष्टिकोण से वास्तविक निहितार्थ निहित हैं। किसी भी वित्त आयोग की सिफारिशें अनिवार्य रूप से देश की विकसित होती राजनीतिक अर्थव्यवस्था के लिए एक मजबूत संदेश देती हैं। चाहे वह 14वें वित्त आयोग द्वारा राज्यों के लिए केंद्र के वितरण में 10 प्रतिशत अंकों की तेज वृद्धि के रूप में हो, या 15वें वित्त आयोग द्वारा राजस्व घाटा अनुदानों को धीरे-धीरे समाप्त करने के रूप में। इस कसौटी पर, 16वां वित्त आयोग भी अपवाद नहीं है।

याद रहे कि जब 16वां वित्त आयोग राज्यों के साथ संवाद कर रहा था, उस समय जिस राजनीतिक अर्थव्यवस्था की चर्चा हावी रही, वह दक्षिणी राज्यों की चिंता और असंतोष की थी। इन राज्यों ने यह जाहिर किया कि अपेक्षाकृत आर्थिक प्रगति के बावजूद उन्हें अनुचित व्यवहार मिला। आय की दूरी और जनसांख्यिकीय प्रदर्शन के मानदंड आर्थिक रूप से अधिक समृद्ध दक्षिणी राज्यों के खिलाफ थे। इसलिए इन राज्यों ने तर्क दिया कि उन्हें केंद्रीय करों के विभाज्य पूल में अपने हिस्से से वंचित नहीं किया जाना चाहिए, केवल इसलिए कि वे वित्तीय और सामाजिक- आर्थिक दृष्टि से अधिक जिम्मेदार और विवेकपूर्ण रहे हैं।

इन सिफारिशों को सार्वजनिक हुए तीन सप्ताह से अधिक समय बीत गया है। दक्षिण भारत के राज्य अब बीच करों के विभाजन को लेकर अनुचित रवैये की आलोचना नहीं कर रहे हैं। 16वें वित्त आयोग की अनुशंसा के मुताबिक 28 राज्यों में से आधे राज्यों को केंद्रीय करों में अधिक हिस्सेदारी मिल रही है। इनमें से करीब पांच राज्य जिनकी हिस्सेदारी बढ़ी है वे दक्षिण भारत से हैं। ये हैं: आंध्र प्रदेश, कर्नाटक, केरल, तमिलनाडु और तेलंगाना । यकीनन अन्य राज्यों मसलन असम, गुजरात, हरियाणा, हिमाचल प्रदेश, झारखंड, महाराष्ट्र, मिजोरम, पंजाब और उत्तराखंड आदि को भी लाभ हुआ है। परंतु पांच दक्षिणी राज्यों का अपना हिस्सा बढ़ाना राजनीतिक रूप से महत्त्वपूर्ण है, खासकर उस बात के संदर्भ में जो सिफारिशें सार्वजनिक होने से पहले प्रचलित थी ।

ध्यान दें कि आने वाले पांच साल में पांच उत्तरी राज्यों की केंद्रीय करों में हिस्सेदारी कम रहेगी। ये वे राज्य है जहां पिछले कुछ साल में भारतीय जनता पार्टी ने राजनीतिक रूप से बेहतर प्रदर्शन किया है। ये हैं: बिहार, छत्तीसगढ़, मध्य प्रदेश, राजस्थान और उत्तर प्रदेश। यह भी सही है कि जिन राज्यों को नुकसान हुआ है उनमें पश्चिम बंगाल के अलावा अरुणाचल प्रदेश, मणिपुर, मेघालय, नागालैंड, सिक्किम और त्रिपुरा शामिल हैं। परंतु यह भी अहम है कि भाजपा शासित गोवा और ओडिशा की केंद्रीय कर हिस्सेदारी भी कम हुई है।

दक्षिणी राज्यों को 16वें वित्त आयोग के उस निर्णय से कुछ लाभ हुआ है जिसमें उसने पूर्ववर्ती आयोग की व्यवस्था को लागू किया। यानी उन राज्यों के लिए राजस्व घाटा अनुदानों को धीरे-धीरे समाप्त करना, जिनका राजस्व व्यय और राजस्व प्राप्तियों के बीच अंतर बना रहता है, भले ही उन्हें करों के वितरण के तहत केंद्रीय करों का हिस्सा मिल चुका हो। अप्रैल 2021 से मार्च 2026 के बीच केवल नौ राज्यों ने कुल राजस्व घाटा अनुदानों (लगभग 2.95 लाख करोड़ रुपये) का 84 फीसदी से अधिक हिस्सा प्राप्त किया है। इस सूची में केवल दो दक्षिणी राज्य शामिल हैं केरल और आंध्र प्रदेश। राजस्व घाटा अनुदानों की समाप्ति के साथ, स्पष्ट रूप से शेष सात राज्य इस निर्णय से अधिक प्रभावित होंगे। ये हैं पश्चिम बंगाल, हिमाचल प्रदेश, उत्तराखंड, पंजाब, त्रिपुरा, असम और राजस्थान ।

16वें वित्त आयोग की सिफारिशों के राजनीतिक अर्थव्यवस्था संबंधी निहितार्थ बहुत स्पष्ट हैं। उत्तरी राज्यों, जिनमें से कई भाजपा शासित हैं, ने केंद्रीय करों में अपना हिस्सा कम किया है, ठीक वैसे ही जैसे दक्षिणी राज्यों ने विभाज्य पूल में अपने हिस्से में वृद्धि की है। आर्थिक लाभों की इस खींचतान में दक्षिणी राज्य विजेता के रूप में उभरते दिखाई देते हैं। यह आगामी राजनीतिक सत्ता या चुनावी लाभ की लड़ाई के लिए क्या संकेत देता है ? अब जबकि 16वें वित्त आयोग की सिफारिशों ने दक्षिणी राज्यों की आर्थिक हानि की भावना को कम कर दिया है, क्या भाजपा शासित केंद्र सरकार बहुचर्चित परिसीमन की ओर बढ़ेगी जिसमें एक कानूनी प्रक्रिया के तहत जनसंख्या में हुए बदलावों के आधार पर संसद और विधान सभा निर्वाचन क्षेत्रों की सीमाओं का पुनर्निर्धारण किया जाता है ?

वर्ष 2002 में एक संविधान संशोधन ने निर्वाचन क्षेत्रों के परिसीमन को 2026 के बाद होने वाली पहली जनगणना के परिणाम उपलब्ध होने तक स्थगित कर दिया था। केंद्र सरकार जल्द ही नई जनगणना का कार्य शुरू करेगी, जो 2027 तक पूरी हो जानी चाहिए, और इससे परिसीमन प्रक्रिया का मार्ग प्रशस्त होगा। 2027 के बाद किया गया कोई भी परिसीमन उत्तरी राज्यों को अधिक चुनावी ताकत देगा, क्योंकि उनकी जनसंख्या दक्षिणी राज्यों की तुलना में कहीं अधिक तेजी से बढ़ी है। क्या परिसीमन के बाद उत्तरी राज्यों को अधिक चुनावी शक्ति देना अधिक प्रबंधनीय होगा, यह देखते हुए कि दक्षिणी राज्यों को केंद्रीय करों में अधिक हिस्सेदारी देकर अधिक आर्थिक शक्ति पहले ही दी जा चुकी है। यदि ऐसा होता है, तो 16वें वित्त आयोग की सिफारिशों को केंद्र सरकार के लिए एक बड़े राजनीतिक अर्थव्यवस्था संबंधी चुनौती का समाधान माना जाएगा।

जनसत्ता

Date: 28-02-26

साख पर सवाल

संपादकीय

केंद्रीय जांच ब्यूरो (सीबीआई) और प्रवर्तन निदेशालय (ईडी) के कामकाज के तरीके और जांच की पद्धति पर पहले भी सवाल उठते रहे हैं। यह चिंता भी जताई जाती रही है। कि आखिर इससे इन जांच एजेंसियों की कैसी छवि बन रही है मगर दिल्ली में शराब नीति से जुड़े कथित घोटाले के संबंध में विशेष अदालत का जो फैसला आया है, उससे फिर यह सवाल उठा है कि क्या ये एजेंसियां किसी खास मंशा के तहत सोच-समझ कर नेताओं या अन्य लोगों के खिलाफ मामला उठाती हैं और क्या उनका बेजा इस्तेमाल हो रहा है। गौरतलब है कि आबकारी नीति से संबद्ध मामले में विशेष अदालत ने दिल्ली के पूर्व मुख्यमंत्री अरविंद केजरीवाल, पूर्व उपमुख्यमंत्री मनीष सिसोदिया और अन्य इक्कीस लोगों को आरोपमुक्त कर दिया। विशेष अदालत में हुई सुनवाई के बाद यही सामने आया कि अभियोजन पक्ष ने आरोपियों के विरुद्ध जो भी आरोप लगाए थे, उसे साबित करने के लिए उनके पास कोई ठोस सबूत नहीं था। लापरवाही या हड़बड़ी का अंदाजा इससे लगाया जा सकता है कि सीबीआइ ने अदालत में जो आरोपपत्र प्रस्तुत किए, उनमें न सिर्फ गंभीर खामियां थीं, बल्कि कई विरोधाभास भी थे।

सवाल है कि देश की सबसे महत्त्वपूर्ण एजंसी इतने बड़े स्तर पर मामला उठाते हुए किसी आरोप पर किस तरह काम करती है, कैसे आरोपपत्र तैयार करती है कि उसे खारिज किए जाने का एक आधार उसमें विरोधाभास होना होता है। यह मामला वर्ष 2021-22 के दौरान दिल्ली आबकारी नीति से जुड़ा है, जिसका उद्देश्य राजस्व बढ़ाना और शराब के कारोबार में सुधार करना बताया गया था। हालांकि बाद में इसमें घोर अनियमितता के आरोप लगे और मामले की जांच सीबीआई को सौंपी गई। इसके बाद ईडी और सीबीआइ की ओर से यह आरोप लगाया गया कि इस नीति के जरिए निजी कंपनियों को अनुचित फायदा पहुंचाया गया। इस आरोप में मनीष सिसोदिया और बाद में अरविंद केजरीवाल को भी गिरफ्तार किया गया था। सुनवाई के बाद अदालत ने पाया कि इस मामले में लगाए गए आरोपों के पक्ष में ठोस और विश्वसनीय सबूत नहीं थे। लिहाजा अदालत ने मामले को रद्द कर दिया और सभी तेईस आरोपियों को आरोपों से मुक्त कर दिया। अदालत की यह टिप्पणी सीबीआइ के लिए बेहद असुविधाजनक होनी चाहिए कि उसने केवल अनुमानों के आधार पर साजिश की कहानी गढ़ने की कोशिश की।

दरअसल, पिछले कुछ वर्षों के दौरान ईडी और सीबीआइ पर किसी खास मंशा से ग्रस्त होकर या अप्रत्यक्ष रूप से किसी के इशारे पर काम करने के आरोप कई बार लगे हैं। इसकी गंभीरता का अंदाजा इससे लगाया जा सकता है कि इन एजेंसियों की कार्यप्रणाली को लेकर सुप्रीम कोर्ट को भी कई बार सख्त टिप्पणियां करनी पड़ीं। शीर्ष अदालत ने यहां तक कहा था कि ये एजेंसियां गवाहों से लेकर आरोपियों तक के मामले में भेदभावकारी नीति अपनाती हैं। मगर हैरानी की बात है कि विपक्षी दलों से लेकर अदालतों की ओर से बार- बार सवाल उठाए जाने के बावजूद ईडी और सीबीआइ के काम करने के तरीके में कोई बदलाव नहीं देखा जा रहा। इस बात पर विचार करने की जरूरत है कि ईडी की ओर से जितने भी मामले दर्ज किए जाते हैं, उसमें दोषसिद्धि की दर कितनी है और ऐसा क्यों है क्या यह चिंता की बात नहीं होनी चाहिए कि सिर्फ कामकाज की शैली की वजह से जिस तरह इन एजेंसियों की साख पर सवाल उठ रहे हैं, उससे सही मामलों में भी इनकी विश्वसनीयता संदेह के घेरे में रहेगी ?

Live हिन्दुस्तान .com

Date: 28-02-26

बरी हुए केजरीवाल

संपादकीय

दिल्ली की एक अदालत ने कथित शराब घोटाला मामले में पूर्व मुख्यमंत्री अरविंद केजरीवाल समेत सभी 23 आरोपियों को बरी कर दिया है। इससे देश की ख्यात जांच एजेंसी केंद्रीय जांच ब्यूरो (सीबीआई) के साथ ही ईडी को भी झटका लगा है, तो दूसरी ओर, आम आदमी पार्टी में स्वाभाविक ही नए उत्साह का संचार हो गया है। यह तथ्य है, आबकारी नीति से जुड़े इस कथित घोटाले से सर्वाधिक नुकसान आम आदमी पार्टी का हुआ था, जो तब दिल्ली की सत्ता में थी। वैसे, निचली अदालत के इस फैसले के खिलाफ सीबीआई उच्च न्यायालय में अपील करेगी, पर प्रथम दृष्टया, इस सवाल को बल मिला है कि क्या सीबीआई दिल्ली के कुछ आला नेताओं को बगैर मजबूत अभियोजन के कठघरे में खड़ा कर रही थी? अब सीबीआई भले यह

शिकायत करे कि निचली अदालत ने तथ्यों को ठीक से नहीं देखा, पर तथ्यों को अदालत में ठीक से पेश करने की जिम्मेदारी क्या सीबीआई की नहीं थी? केवल किसी मामले को उठा देना, सनसनी बनाकर बड़े से बड़े नेता या मुख्यमंत्री, मंत्री को गिरफ्तार कर लेना कहां तक उचित है ? क्या किसी नागरिक या नेता पर शिकंजा कसने से पहले ही किसी जांच एजेंसी को अपराध संबंधी तमाम सुबूत नहीं जुटाने चाहिए?

खैर, यह देखने वाली बात होगी कि अब सीबीआई उच्च न्यायालय में अपील करते हुए कैसे नए सुबूत पेश करती है? सीबीआई ही नहीं, देश की सभी जांच एजेंसियों को गौर करना चाहिए कि हर एजेंसी की एक छवि है, जो बिगड़नी नहीं चाहिए। एजेंसियों को अपनी छवि के साथ ही, आम लोगों की गरिमा, जन- प्रतिनिधियों और प्रबुद्ध लोगों की छवि के प्रति भी सचेत रहना चाहिए। वैसे भी जन प्रतिनिधियों पर आरोप कम नहीं लगते हैं, पर ऐसे आरोप राजनीतिक प्रवृत्ति के ज्यादा होते हैं। यहां यह ध्यान रखने की बात होगी कि राजनीतिक प्रवृत्ति के आरोपों से प्रेरित होकर हमारी एजेंसियों को कदम नहीं उठाने चाहिए। इससे भी बड़ी बात है, एक बार पुख्ता ढंग से सुबूत जुटा लिए, आरोप लगा दिए, गिरफ्तार कर लिया, तो अपराध साबित करके दम लेना चाहिए। इस बहु-चर्चित मामले में अभाव केवल सुबूतों का ही नहीं है, अभियोजन में कई आंतरिक विरोधाभास भी हैं, तभी यह मामला न्यायिक जांच में खरा नहीं उतरा है।

निस्संदेह, अदालत के इस फैसले से पूरी आम आदमी पार्टी का मनोबल बढ़ेगा। अरविंद केजरीवाल की बातों पर लोग गौर कर रहे हैं। उन्होंने भावुक होते हुए कहा है कि मैं भ्रष्ट नहीं हूं, साबित हो गया है कि केजरीवाल और मनीष सिसोदिया ईमानदार हैं। संकेत स्पष्ट है, यहां से आम आदमी पार्टी की राजनीति को नया जीवन मिलेगा। जिन राज्यों में चुनाव आसन्न हैं, वहां पार्टी की सक्रियता बढ़ेगी। अभी पंजाब में आम आदमी पार्टी की सरकार है, सबसे ज्यादा फायदा उसे वहीं होगा। साल 2027 में वहां विधानसभा चुनाव होने हैं और आम आदमी पार्टी अब वहां आक्रामक ढंग से प्रचार कर सकेगी। राजनीति का अपना ढंग होता है, वहां राजनेता लाभ-हानि का गणित बिठाते हैं और इस बार भी जरूर बिठाएंगे। हमारे लिए ज्यादा चिंतन की बात तो यह है कि कानून- व्यवस्था पर आम लोगों के विश्वास को कैसे बनाए रखा जाए? अब समय आ गया है कि देश की तमाम जांच एजेंसियों या उसके अधिकारियों की योग्यता को परखा जाए। अगर कोई भी जांच एजेंसी अभियोजन, जांच और ईमानदार दस्तावेजीकरण में कोताही बरत रही है, तो उसमें यथोचित सुधार की पहल शुरू होनी चाहिए।

Date: 28-02-26

पाकिस्तान-अफगान जंग के मायने

सुशांत सरीन, (सीनियर फेलो, ऑब्जर्वर रिसर्च फाउंडेशन)

पाकिस्तान ने डुरंड सीमा पर 'खुली जंग' का एलान करके बेवजह मुसीबत मोल ले ली है। इस्लामाबाद का दावा है कि बीते 48 घंटों में उसके हवाई हमलों से अफगान- तालिबान के 133 लड़ाके मारे गए हैं, जबकि 200 से अधिक घायल हुए हैं, उधर काबुल ने भी बयान जारी करके कहा है कि उसकी जवाबी कार्रवाई में 55 पाकिस्तानी सैनिक ढेर हुए हैं। इस बदलते घटनाक्रम पर तमाम देशों की नजर है। रूस सहित कई मुल्कों ने तुरंत संघर्ष विराम की अपील भी की है।

आखिरकार अफगानिस्तान-पाकिस्तान के संबंध इतने खराब कैसे हो गए ? यह सही है कि बीते दो दिनों में सीमा पर काफी कुछ अप्रत्याशित घटा है, लेकिन दोनों देशों में तनातनी तो तभी शुरू हो गई थी, जब 2021 में तालिबान ने काबुल की सत्ता संभाली थी। दरअसल, दुनिया भर में तालिबान की 'तारीफ' कर पाकिस्तान ने तकरीबन दो दशकों तक उस पर 'निवेश' किया था, लेकिन जब तालिबान को बागडोर मिली, इस्लामाबाद का भ्रम टूटने लगा। इसकी शुरुआत हुई तहरीक-ए- तालिबान के करीब 5,000 लड़ाकों की रिहाई से, जो अफगान जेलों में बंद थे। इसके बाद पाकिस्तान में छोटे- बड़े हमले बढ़ गए, जिनको इस्लामाबाद अफगान- तालिबान की कारस्तानी बताता है, जबकि उनके पीछे तहरीक-ए-तालिबान का हाथ था ।

अब चूंकि तहरीक-ए-तालिबान (पाकिस्तान के तालिबान) और अफगान तालिबान में करीबी रिश्ता रहा है, इसलिए इस्लामाबाद ने इन हमलों के जवाब में अफगानिस्तान के भीतर बमबारी शुरू की। इन कार्रवाइयों की एक वजह यह भी थी कि पाकिस्तान अफगान हुकूमत को अपने अधीन रखना चाहता था, जबकि अफगानों के बारे में यही कहा जाता है कि 'उनको किराये पर तो लिया जा सकता है, मगर खरीदा नहीं जा सकता' । इससे अफगानिस्तान को अपना पांचवां सूबा बनाने की पाकिस्तान की मंशा भी टूट गई।

यहां मुल्ला अब्दुल सलाम जईफ की किताब माई लाइफ विद द तालिबान का जिक्र भी जरूरी है। जईफ 2000-01 के दौरान पाकिस्तान में अफगानिस्तान के राजदूत थे। उन्होंने लिखा है, इस्लाम का गलत इस्तेमाल करने के कारण अफगानों को पाकिस्तान पसंद नहीं। उनके मुताबिक, अरब मुल्कों से इमदाद लेने के लिए पाकिस्तान इस्लाम के राग अलापता है और धर्म का कथित ठेकेदार बना हुआ है। अफगानों को लगता है कि पाकिस्तान ने उनको धोखा दिया है, क्योंकि अपने हित के लिए उसने तालिबान के विरुद्ध अमेरिका से हाथ मिला लिया था। उनको पाकिस्तान की वे यातनाएं भी याद हैं, जब संरक्षण का भरोसा देने के बावजूद उनके लोगों को बंधक बनाया गया व बर्बर कार्रवाई की गई।

बहरहाल, डुरंड रेखा पर फिलहाल 'पारंपरिक जंग' शायद ही होगी, क्योंकि जिस तरह से अक्तूबर 2025 से यहां तनाव बना हुआ है, उसका असर खूब पड़ रहा है। उस समय करीब एक हफ्ते तक संघर्ष चला था, जिसपर तुर्किये और कतर की मध्यस्थता के बाद विराम लग सका था, लेकिन उसके बाद पाकिस्तान ने सीमा बंदकर दी। इससे पाकिस्तान का व्यापार तो प्रभावित हुआ ही, क्योंकि अफगानिस्तान उसके लिए एक बड़ा बाजार रहा है, लेकिन काबुल को कहीं ज्यादा समस्याएं हुईं। इससे वहां दवाई जैसी जरूरी चीजों की आपूर्ति भी बाधित हो गई थी, जिसकी पूर्ति बाद में भारत ने ' मानवीय मदद' के रूप में की।

दबाव बनाने का पाकिस्तान का यह दांव यहीं तक नहीं रुका। उसने अपने यहां दो-ढाई दशकों से रह रहे अफगान शरणार्थियों को भी निशाना बनाना शुरू कर दिया और उनकी संपत्ति लूट ली। मूलतः पंजाबी मुसलमानों ने ऐसा किया और उनको अफगानिस्तान वापस भेजना शुरू किया। इन सबसे अफगानिस्तान में पाकिस्तान को लेकर जबर्दस्त नाराजगी फैली। रही-सही कसर 'आतंकवाद विरोधी अभियान' के नाम पर शुरू की गई हालिया कार्रवाइयों ने पूरी कर दी। हालांकि, ये हमले पाकिस्तानी हुकूमत ने 'मजबूरीवश' किए हैं, क्योंकि बीते दो हफ्तों में जब कुछ बड़े हमले पाकिस्तान के भीतर हुए, तो वहां की हुकूमत पर 'कुछ करने' का दबाव बढ़ गया था। मौजूदा हुकूमत अवाम में लोकप्रिय नहीं है। लिहाजा, फौज की शह पर अफगानिस्तान के सरहदी इलाकों में बमबारी की गई, जिनमें तालिबानी लड़ाकों से कहीं ज्यादा आम अफगान की मौत हुई। इससे अफगानिस्तान की हुकूमत को भी कार्रवाई लिए बाध्य होना पड़ा है।

यह संघर्ष आखिर कहां रुकेगा ? तीन स्थिति बनती दिख रही है। पहली, पाकिस्तान की तरफ से लगातार हमले होते रहेंगे और ये तब रुकेंगे, जब अफगानिस्तान के अंदर करीब 10 किलोमीटर तक 'नो मेन्स लैंड' बनाने की अपनी योजना इस्लामाबाद पूरी कर लेगा। दूसरी, दोनों तरफ से ठहर-ठहरकर संघर्ष होते रहेंगे और बीच-बचाव से मामला शांत किया जाता रहेगा। तीसरी स्थिति कहीं अधिक गंभीर है। संभव है कि अफगान हुकूमत अपने यहां के तालिबान को खुली कार्रवाई करने की छूट दे दे। चूंकि काबुल की सरकार पाकिस्तान से खार खाए हुए है, इसलिए स्थिति कोई भी बनेगी, चुनौती इस्लामाबाद के सामने ही अधिक रहेगी।

इससे पाकिस्तान की दुविधा कहीं अधिक बढ़ जाती है । वह तालिबान को सह भी नहीं सकता और उसे रोक भी नहीं सकता। अमेरिका इसका ज्वलंत उदाहरण है, जिसने ढाई-तीन लाख अफगानों को मारा, फिर भी उसे अफगानिस्तान में मुंह की खानी पड़ी। लिहाजा, यह पूरा घटनाक्रम पाकिस्तान द्वारा उड़ता तीर लेने जैसा है। अफगानिस्तान के पक्ष में उसका यह आश्वासन भी है, जिसमें उसने कहा था कि वह अपनी जमीन का इस्तेमाल किसी के खिलाफ नहीं होने देगा। उसने कई देशों से यह वायदा किया है और अब तक वह इस पर खरा उतरा है। ऐसे में, पाकिस्तान अपनी करनी का फल ही भोग रहा है। आतंकवाद की जिस आग को उसने भड़काया, आज वही उसको लील रही है।

रही बात भारत की, तो हमें शायद ही कोई खतरा है। भारत का रुख स्पष्ट है। हम पाकिस्तान की कार्रवाई को अफगानिस्तान की संप्रभुता का उल्लंघन मानते हैं। सीमा पार कार्रवाइयों से तनाव ही बढ़ेगा।

Date: 28-02-26

विरोध करने के अधिकार को देशद्रोह न माना जाए

आलोक शर्मा, (राष्ट्रीय प्रवक्ता, कांग्रेस)

जब से मोदी सरकार सत्ता में आई है और कोई भी उसकी नीतियों के खिलाफ आवाज उठाता है, तो उसे खामोश करने की कोशिश की जाती है। कोई किसी विधेयक के खिलाफ आवाज उठाता है, तो उसे देशद्रोही कह दिया जाता है; कोई मुस्लिम आवाज उठाता है, तो उसे पाकिस्तान जाने की नसीहत दी जाने लगती है; कोई पढ़ा- लिखा किसी मुद्दे पर विरोध जताता

है, तो वह 'अर्बन नक्सल' हो जाता है; युवा रोजगार मांगते हैं, तो पुलिस की लाठियों से पीटे जाते हैं। आज जो हालात बने हैं, वे बहुत सारे मुद्दों के इकट्ठे होने से बने हैं।

देश के युवा मोदीजी में अपना भविष्य देख रहे थे। अब इन नौजवानों के सब्र का बांध टूटता जा रहा है। बेरोजगारी का आलम यह है कि आईआईटी जैसे श्रेष्ठतम संस्थानों से 'प्लेसमेंट' के बारे में बहुत सकारात्मक संकेत नहीं आ रहे हैं। मुक्त व्यापार (फ्री ट्रेड) का झुनझुना बजाया जा रहा है। पहले न्यूजीलैंड के साथ फ्री ट्रेड किया गया। न्यूजीलैंड की पूरी आबादी बमुश्किल 55 लाख है। इससे हमें तो फायदा नहीं होगा, न्यूजीलैंड को होगा। उसके डेयरी उत्पाद यहां आएंगे और हम डेयरी प्रोडक्ट के मामले में मारे जाएंगे। इसके बाद यूरोपीय संघ से समझौता किया गया। उनके लिए सारे रास्ते खोल दिए गए। जिस दिन एफटीए हुआ, जिसे 'मदर ऑफ ऑल डील्स' कहा गया, उसी दिन यूरो मजबूत और रुपया कमजोर हो गया।

अमेरिका से ऐसा व्यापार समझौता हुआ कि न वाणिज्य मंत्री को कुछ पता, न विदेश मंत्री को मालूम। विदेश मंत्री से पूछिए, तो वह वाणिज्य मंत्री की बात करते हैं, वाणिज्य मंत्री एनएसए की बात करते हैं, फिर भी आप कहीं धरना- प्रदर्शन नहीं कर सकते।

हमने प्रतीकात्मक रूप से एक विरोध-प्रदर्शन किया कि आप यह सब नहीं कर सकते। यह यूथ कांग्रेस ने किया। सरकार इतना डर गई कि प्रदर्शनकारियों के खिलाफ मुकदमे दर्ज करने, धर-पकड़ करने में जुट गई। उनके खिलाफ ऐसी-ऐसी धाराएं लगाई गई हैं, जैसे आतंकियों को पकड़ लिया गया हो। आज तक पुलवामा किसने किया, इसका पता नहीं लगा है; पहलगाम वालों का क्या हुआ, पता नहीं; दिल्ली में इतना बड़ा धमाका हो गया, आज तक उसके मृतकों की सूची जारी नहीं की गई, लेकिन कांग्रेस के युवाओं को मार रहे हैं।

यह सरकार व्यापार समझौते में अमेरिका के सामने घुटने टेक रही है, किसानों के हितों को गिरवी रख रही है और यह चाहती है कि कोई उसका विरोध भी नहीं करे। युवा कांग्रेस के साथियों ने प्रतीक के तौर पर 'पीएम इज कंप्रोमाइज्ड' का नारा लगाया और अपना विरोध-प्रदर्शन किया। इसके लिए प्रधानमंत्री ने जिस शब्दावली का प्रयोग किया, वह बहुत दुखद है। हालत यह है कि सरकार छापेमारी करती घूम रही है कि टीशर्ट कहां छपी ? इसके पैसे किसने दिए ?

अभी प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी इजरायल गए थे, वहां उनकी मौजूदगी में इजरायली पीएम बेंजामिन नेतन्याहू के खिलाफ खूब नारे लगे। तो क्या हम यह कहेंगे कि ये नारे हमारे देश के खिलाफ लगे? अगर एआई समिट में हमने अपनी सरकार की नीतियों का विरोध किया, तो यह क्यों माना जाना चाहिए कि ये नारे सम्मेलन में आए विदेशी मेहमानों के खिलाफ लगे ?

भारत मंडपम में शांतिपूर्ण प्रदर्शन किया गया। किसी ने कोई लड़ाई-झगड़ा, हिंसक प्रदर्शन नहीं किया, बल्कि वहां मौजूद भाजपा के कुछ लोगों ने ही हमारे कार्यकर्ताओं पर हमला किया। झगड़ा बढ़ सकता था, लेकिन हम गांधीजी में विश्वास रखते हैं, इसलिए वहां कोई जवाबी हमला नहीं हुआ। हमारी सरकार बनने पर या आज भी जिन राज्यों में हमारी सरकारें हैं, अगर भाजपा के लोग शांतिपूर्ण प्रदर्शन करेंगे, तो हम सम्मान करेंगे। कांग्रेस जैसे को तैसा में विश्वास नहीं करती।